SHODHPATRA: INTERNATIONAL JOURNAL OF SCIENCE AND HUMANITIES
E-ISSN: 3048-6041 | Volume- 3, Issue- 3 | March 2026

भारतीय समाज में गोत्र की अवधारणा: एक अध्ययन

सोमचंद [1], डॉ. गिरीश गौरव [2]

[1] शोधार्थी, समाजशास्त्र एवं सामाजिक नृविज्ञान विभाग, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, सप्त सिंधु परिसर -2, देहरा, हिमाचल प्रदेश

[2] सहायक आचार्य, समाजशास्त्र एवं सामाजिक नृविज्ञान विभाग, प्रभारी, भारतीय पंथ मत सम्प्रदाय एवं सेमेटिक धर्म अध्ययन केंद्र, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय

सारांश

भारतीय समाज और संस्कृति मानव सभ्यता की अमूल्य धरोहरों में से एक है। यदि विश्व की किसी संस्कृति को दीर्घकालिक, जीवंत और निरंतर विकसित होने वाली संस्कृति कहा जा सकता है, तो वह निस्संदेह भारतीय संस्कृति है। अपनी प्राचीनता, विविधता तथा ज्ञानपरक परंपराओं के कारण भारतीय संस्कृति ने हजारों वर्षों से समाज के संगठन और सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखा है। भारत के दीर्घ इतिहास में यहाँ के लोगों ने ऐसी सामाजिक व्यवस्था और सांस्कृतिक परंपराओं का निर्माण किया है, जो अपनी मौलिकता और विशिष्टता के कारण विश्व की अन्य सभ्यताओं से भिन्न दिखाई देती हैं। भारतीय संस्कृति की विशेषता यह रही है कि इसमें ज्ञान और आध्यात्मिकता को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। यही कारण है कि भारतीय परंपरा मूलतः ज्ञानपरक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से प्रेरित रही है, न कि केवल भौतिकवादी दृष्टि से। विश्व की विभिन्न संस्कृतियों में सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में अनेक प्रकार की मान्यताएँ और व्याख्याएँ मिलती हैं, किन्तु भारतीय परंपरा में इस विषय को विशेष रूप से ऋषियों के ज्ञान से जोड़ा गया है। भारतीय वैदिक परंपरा के अनुसार सृष्टि के ज्ञान और उसके रहस्यों को सर्वप्रथम ऋषियों ने ही अनुभूत किया। आकाश में स्थित तारामंडलों के संदर्भ में भी भारतीय परंपरा में ध्रुव तारे तथा सप्तऋषि मंडल का उल्लेख मिलता है। यह प्रतीकात्मक रूप से इस विश्वास को व्यक्त करता है कि ऋषि केवल आध्यात्मिक ज्ञान के स्रोत ही नहीं थे, बल्कि वे सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं के प्रवर्तक भी थे। वेदों के रचयिता के रूप में भी ऋषियों का उल्लेख किया जाता है, किन्तु भारतीय दार्शनिक परंपरा में उन्हें 'मंत्रद्रष्टा' कहा गया है, अर्थात वेदों के मंत्र उनके द्वारा रचे नहीं गए, बल्कि उनकी अंतःप्रज्ञा में प्रकट हुए। भारतीय समाज में यह मान्यता भी प्रचलित है कि जिन ऋषियों ने ज्ञान की परंपरा को प्रकाशित किया, उन्हीं से विभिन्न वंशों की उत्पत्ति भी मानी जाती है। इन वंश प्रवर्तक ऋषियों को ही गोत्र प्रवर्तक कहा जाता है। इस प्रकार गोत्र की अवधारणा भारतीय समाज में वंश परंपरा, सामाजिक पहचान और सांस्कृतिक निरंतरता से गहराई से जुड़ी हुई है। भारतीय धार्मिक ग्रंथों में विभिन्न गोत्र प्रवर्तक ऋषियों का विस्तृत वर्णन मिलता है, जिनके आधार पर भारतीय समाज की वंश परंपराओं को समझा जा सकता है।

संकेत बिन्दु : - भारतीय समाज, गोत्र, सामाजिक पहचान, संस्कृति, परंपरा, सप्तर्षि।

प्रस्तावना

भारतीय समाज को समझने के लिए जब उपनिवेशवादी चिंतकों ने पश्चिम समाज के आधार पर ही भारतीय समाज

*Corresponding Author Email: som98940@gmail.com
Published: 18 March 2026
DOI: https://doi.org/10.70558/SPIJSH.2026.v3.i3.45602
Copyright © 2026 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0).

को समझने का प्रयास किया उन्होंने भारतीय समाज विद्यमान जाति व्यवस्था के आधार पर ही भारतीय समाज को समझा एवं जाति व्यवस्था के विभेदक मूलक तत्वों को ही उन्होंने देखा, जाति व्यवस्था के एकतामूलक तत्वों पर उनका ध्यान आकृष्ट नहीं हो सका। क्योंकि उनके समाज में जो प्रजाति का स्वरूप था, उन्होंने उसी के आधार पर भारतीय समाज में विद्यमान जाति की व्याख्या की। उसी के आधार पर ही भारत के विद्वानों ने भी लगभग भारतीय समाज को समझने के लिए भारतीय समाज के विखंडनकारी तत्व रहे जाति व्यवस्था के आधार पर ही समझने का प्रयास किया। किंतु वर्तमान बदलते हुए भारतीय समाज के परिपेक्ष्य में एक मौलिक प्रश्न यहां यह उत्पन्न होता है कि आखिर वे कौन से कारण रहे कि भारतीय समाज में इतने प्रकार की झंझावातों के बावजूद भारतीय समाज उस स्वरूप में खंडित नहीं हुआ जिस स्वरूप में जातीय समाज पर आधारित खंडित भारतीय समाज दिखाई देता है। जिसकी व्याख्या भारतीय समाज के व्याख्याकारों ने की है। परंतु जब हम सूक्ष्म दृष्टि अथवा गहराई से भारतीय समाज को देखते हैं तो जो भारतीय समाज के एकतामुलक, प्रमुख तत्व है, वह भारतीय समाज की गोत्र व्यवस्था है।

गोत्र भारतीय समाज की ही नहीं अपितु पूरी दुनिया में एक अनोखी व्यवस्था है। गोत्र की अवधारणा ना केवल भारत के मूल समाज बल्कि जनजातीय समाज में भी गोत्र की प्रधानता बहुत ही प्रखर रूप से दिखाई देती है। जनजातीय समाज प्रकृति पूजक समाज रहा है। जनजातीय समाज अपने आप को प्रकृति के बहुत ही निकट पाता है। यही कारण है कि जब हम जनजाति समाज में गोत्र की अवधारणा को देखते हैं तो जनजातीय समाज पेड़, पौधे, पशु-पक्षी, पूर्वजों आदि इन सब को अपना गोत्र मानता है। जनजातीय समाज इसी गोत्र व्यवस्था को आधार मानकर चलता है। इस प्रकार से कहा जाए तो वर्तमान भारतीय समाज का बड़ा स्वरूप वह कहीं ना कहीं गोत्र की अवधारणा को वह ऋषि-मुनियों से जोड़कर मानता है। सात की प्रधानता भारतीय समाज में बहुत महत्वपूर्ण है। सप्त ऋषि (कश्यप, वशिष्ट, भृगु, अंगिरा, जमदग्नि, अत्री, विश्वमित्र) के आधार पर ही गोत्र मूल रूप से सात हैं इसके अतिरिक्त पूरा भारतीय समाज 158 उप-गोत्र में विभक्त हैं। अगर हम गोत्र के आधार पर भारतीय समाज को समझने एवं सामाजिक व्यवहार में स्थापित करने का प्रयास करें तो भारतीय समाज में एक मनोवैज्ञानिक परिवर्तन दिखाई देगा। भारतीय समाज में गोत्र व्यवस्था भारतीय जनमानस के गौरव का एक स्वर्णिम अध्याय है। भारत के अलावा शेष दुनिया की अन्य जातियों में यह व्यवस्था उपलब्ध नहीं है। गोत्र से व्यक्ति के वंशावली की पहचान होती है एवं इससे हर व्यक्ति अपने को गौरवान्वित महसूस करता है । हिन्दू धर्म की सभी जातियों में गोत्र पाए गए है। ये किसी न किसी गाँव, पेड़, जानवर, नदियों, व्यक्ति के नाम, ऋषियों के नाम, फूलों या कुलदेवी के नाम पर बनाए गए है। गोत्र भारतीय सामाजिक व्यवस्था का वह एकतामुलक तत्व है जिसको अभी वर्तमान समय में उभारने की आवश्यकता है। जो न केवल धार्मिक सांस्कृतिक व्यवहार तक रहे बल्कि उससे आगे बढ़कर सामाजिक व्यवहार के रूप में भी कार्य कर सके। भारतीय गोत्र व्यवस्था कहीं ना कहीं पूरी तरह से मनोवैज्ञानिकता, वैज्ञानिकता पर आधारित व्यवस्था भी दिखाई पड़ती है।

शोध प्रविधि:

प्रस्तुत शोध में ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मक पद्धति का प्रयोग करते हुए भारतीय समाज में गोत्र की अवधारणा तथा इसकी उत्पत्ति के संदर्भ को खोजने और समझने का प्रयास किया गया है। ईश्वर हेतु इस इस शोध हेतु सूचनाएं द्वितीय स्रोतों से प्राप्त की गई है जिसमें मुख्य रूप से प्राचीन ग्रंथों, महाकाव्यों, पुराणों, उपनिषदों एवं देशी एवं विदेशी लेखकों की पुस्तकों इत्यादि से संदर्भ प्राप्त किए गए हैं।

शोध उद्देश्य:-

प्रस्तुत शोध पत्र में निम्नलिखित उद्देश्यों पर काम करने का प्रयास किया गया है।

1. गोत्र की अवधारणा को समझना।
2. गोत्र परंपरा की उत्पत्ति का अध्ययन करना।

प्रो नारिपेन्द्र चंद्र गोस्वामी[1] ने अपने शोध प्रबंध मे गोत्र की एतिहासिक पृष्टभूमि पर प्रकाश डाला है। इन्होंने ऋग्वेदिक कालिक वंश और गोत्र परम्परा की व्याख्या की है। इसके साथ-साथ गण और गोत्र की चर्चा की गयी है। अपने शोध प्रबंध में इन्होंने गोत्र व्यवस्था के ब्रामणीकरण की ब्याख्या और गोत्र परम्परा की उत्पति और विकास का व्यवस्थित रूप से व्याख्या की गयी है। इस शोध में विभिन्न वर्ण के गोत्रों की जानकारी भी दी गई है।

डॉ० भगवान सिंह[2] अपने लेख गोत्र क्या है और इसकी उत्पति कैसे हुई में लिखते है की गोत्र का इतिहास बहुत पुराण है। इसकी जड़ें इंसान की घुमक्कड़ अवस्था यानी सभ्यता शुरू होने के पहले के वक्त के टोटम और टेबू (निषेध) तक जाती है।

डॉ रघुनाथ प्रसाद तिवाड़ी[3] ने अपनी पुस्तक 'गोत्र प्रवर्तक ऋषि संक्षिप्त परिचय' में गोत्र प्रवर्तक ऋषियों तथा उनके जीवन वृत्त पर जानकारी प्रदान की गई है। इस पुस्तक में गोत्र प्रवर्तक ऋषियों का वर्णन पौराणिक ग्रंथों के संदर्भों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

जॉन ब्रोग[4] द्वारा लिखित पुस्तक 'The Early Brahmanical System of Gotra and Pravara ' में गोत्र और प्रवर से संबंधित जानकारी उपलब्ध करती है। इस पुस्तक में वैदिक ब्राह्मण के वंश परंपरा अथवा गोत्र परंपरा का वर्णन किया गया है इसमें गोत्र परंपरा का वर्णन बहुत सारे पुस्तकीय आधारों पर किया गया है। इसके अलावा इसमें प्रवर और बहिर्विवाह की भी चर्चा की गई है। जॉन ब्रोग ने इस पुस्तक में गोत्र और प्रवर को सूचीबद्ध रूप में प्रस्तुत किया है।

डॉ० महावीर प्रसाद शर्मा[5] ने अपनी पुस्तक 'उत्तर भारतीय ब्राह्मण गोत्र शासनावली' में गोत्र और इस के प्रवर्तक ऋषि यों के बारे में चर्चा की है। ये अपनी पुस्तक में गोत्र के बारे में लिखते हैं की किसी वंश के मूल पुरुष की वंश परंपरा है ही उस वंश का गोत्र होता है। सारे ब्राह्मण समाज का संबंध किसी ना किसी ऋषि से अवश्य होता है। इन्होंने गोत्र से संबंधित प्रवर, सूत्र ,वेद, देवता और शाखा आदि का सारणीबध्द तरीके से वर्णन किया है।

गोत्र क्या है ?

सनातन धर्म में गोत्र का बहुत महत्व है। 'गोत्र' का शाब्दिक अर्थ तो बहुत व्यापक है। विद्वानों ने समय-समय पर इसकी यथोचित व्याख्या भी की है। 'गो' अर्थात् इन्द्रियां, वहीं 'त्र' से आशय है 'रक्षा करना', अतः गोत्र का एक अर्थ 'इन्द्रिय आघात से रक्षा करने वाले' भी होता है जिसका स्पष्ट संकेत 'ऋषि' की ओर है।[6] गोत्र एक शब्द एक कबीले अथवा आदिम समाज, परिवारों के समूह, या एक वंश के लिए लागू होता है - बहिर्विवाह और पितृवंशीय– जिससे सदस्य एक सामान्य पूर्वज के लिए अपने वंश का पता लगाते हैं, आमतौर पर प्राचीन काल का एक ऋषि। एक हिंदू के लिए गोत्र का अत्यधिक महत्व है, क्योंकि यह उसकी पहचान को दर्शाता है। जनजातीय समाज में आज भी गोत्र की प्रधानता का महत्व दिखाई पड़ता है। आज भी मुंडा और उरांव जैसे जनजाति समाज में गोत्र व्यवस्था प्रचलित है। और आम लोग अपने को एक ही मूल पुरखे की संतान जानकर अपने ही गोत्र के भीतर बहू बेटियां नहीं देते। यदि ऐसा हो भी जाता है तो हे दंपत्ति जात से बहिष्कृत कर दिया जाता है। यह गोत्र अथवा गण चिन्ह कोई पक्षी पशु जलचर रेंगने वाले जीव कोई प्राकृतिक चीज कोई या कोई धातु हो सकती है।[6]

सामान्यतः 'गोत्र' को ऋषि परम्परा से संबंधित माना गया है। ब्राह्मणों के लिए तो 'गोत्र' विशेषरूप से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि ब्राह्मण ऋषियों की संतान माने जाते हैं। अतः प्रत्येक ब्राह्मण का संबंध एक ऋषिकुल से होता है। प्राचीनकाल में चार ऋषियों के नाम से गोत्र परंपरा प्रारंभ हुई। ये ऋषि हैं-अंगिरा,कश्यप,वशिष्ठ और भगु हैं। कुछ

समय उपरान्त जमदग्नि, अत्रि, विश्वामित्र और अगस्त्य भी इसमें जुड़ गए। व्यावहारिक रूप में 'गोत्र' से आशय पहचान से है। जो ब्राह्मणों के लिए उनके ऋषिकुल से होती है। कालान्तर में जब वर्ण व्यवस्था ने जाति-व्यवस्था का रूप ले लिया तब यह पहचान स्थान व कर्म के साथ भी संबंधित हो गई। यही कारण है कि ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य वर्गों के गोत्र अधिकांश उनके उद्गम स्थान या कर्मक्षेत्र से संबंधित होते हैं। 'गोत्र' के पीछे मुख्य भाव एकत्रीकरण का है किन्तु वर्तमान समय में आपसी प्रेम व सौहार्द की कमी के कारण गोत्र का महत्त्व भी धीरे-धीरे कम होकर केवल कर्मकाण्डी औपचारिकता तक ही सीमित रह गया है। भारतीय समाज में गोत्र व प्रवर व्यवस्था भारतीय जनमानस के गौरव का एक स्वर्णिम अध्याय है। भारतीय ऋषियों ने कश्यप, वशिष्ट, भृगु, अंगिरा, जमदग्नि, अत्री, विश्वमित्र तथा अगस्त्य आठ ऋषियों को मूल में रखकर गोत्र गणना की है। मानव जीवन में जाति की तरह गोत्रों का बहुत महत्त्व है ,यह हमारे पूर्वजों का याद दिलाता है साथ ही हमारे संस्कार एवं कर्तव्यों को याद दिलाता रहता है । इससे व्यक्ति के वंशावली की पहचान होती है एवं इससे हर व्यक्ति अपने को गौरवान्वित महसूस करता है। हिन्दू धर्म की सभी जातियों में गोत्र पाए गए है । ये किसी न किसी गाँव, पेड़, जानवर, नदियों, व्यक्ति के नाम, ऋषियों के नाम, फूलों या कुलदेवी के नाम पर बनाए गए है । गोत्र भारतीय सनातन संस्कृति की एक अनूठी विशेषता है। अथर्ववेद में एक स्थान पर, एक ही पूर्वज के वंशज के अर्थ में गोत्र प्रयुक्त होता है। तैत्तरीय संहिता के अनुसार बड़े-बड़े ऋषियों के वंशज उन ऋषियों के नाम से पुकारे जाते हैं। सामान्यतः 'गोत्र' को ऋषि परम्परा से संबंधित माना गया है। गोत्र का इतिहास बहुत पुराना है. इसकी जड़ें इंसान की घुमक्कड़ अवस्था यानी सभ्यता शुरु होने के पहले के वक्त के टोटेम और टैबू (निषेध) तक जाती हैं। भारतीय संस्कृति में गोत्र शब्द को वंश के समकक्ष माना जाता है। यह व्यापक रूप से उन लोगों को संदर्भित करता है जो एक सामान्य पुरुष पूर्वज या पितृलोक से एक अखंड पुरुष पंक्ति में वंशज हैं। गोत्र मोटे तौर पर उन लोगों के समूह को कहते हैं जिनका वंश एक मूल पुरुष पूर्वज से अटूट क्रम में जुड़ा है। लेकिन आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के क्रम में गुरु या ऋषि-मुनियों के नाम से अपना संबंध जोड़ते हुए नई पहचान गोत्र के रूप में स्थापित की। एक ही प्राचीन ऋषि आचार्य के शिष्यों को गुरुभाई मानते हुए पारिवारिक संबंध स्थापित किए गए और जैसे भाई और बहन का विवाह नहीं हो सकता उसी तरह गुरुभाइयों के बीच विवाह संबंध ग़लत माना जाने लगा। गोत्र एक प्रणाली है जो एक व्यक्ति को अपने प्राचीन या मूल पूर्वजों के साथ एक अखंड पुरुष वंश में जोड़ती है।[7]

गोत्र एक प्रणाली है जो एक व्यक्ति को अपने प्राचीन या मूल पूर्वजों के साथ एक अखंड पुरुष वंश में जोड़ती है। भारतीय परम्परा में माना जाता है, कि मूल पुरुष ब्रह्मा के चार पुत्र हुए, भृगु, अंगिरा, मरीचि और अत्रि. भृगु के कुल मे जमदग्नि, अंगिरा के गौतम और भरद्वाज,मरीचि के कश्यप,वसिष्ट, एवं अत्रि के विश्वामित्र हुए.इस प्रकार जमदग्नि, गौतम, भरद्वाज, कश्यप, वसिष्ट, अगस्त्य और विश्वामित्र ये सात ऋषि आगे चल कर गोत्रकर्ता या वंश चलाने वाले हुए. सबसे पहले गोत्र सप्तर्षियों के नाम से प्रचलन में आए. सप्तर्षियों मे गिने जाने वाले ऋषियों के नामों में पुराने ग्रथों (शतपथ ब्राह्मण और महाभारत) में कुछ अंतर है. इसलिए कुल नाम- गौतम, भरद्वाज, जमदग्नि, वशिष्ठ (वशिष्ठ), विश्वामित्र, कश्यप, अत्रि, अंगिरा, पुलस्ति, पुलह, क्रतु- ग्यारह हो जाते हैं. इससे आकाश के सप्तर्षियों की संख्या पर तो कोई असर नहीं पड़ता, पर गोत्रों की संख्या प्रभावित होती है. फिर बाद में दूसरे आचार्यों या ऋषियों के नाम से गोत्र प्रचलित हुए. अत्रि के विश्वामित्र के साथ एक और भी गोत्र चला बताते हैं. उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति कहता है कि वह भारद्वाज गोत्र का है तो इसका अर्थ है कि वह अपने पुरुष वंश को प्राचीन ऋषि (संत या द्रष्टा) भारद्वाज के पास वापस भेज देता है। तो गोत्र एक व्यक्ति पुरुष वंश में मूल व्यक्ति को संदर्भित करता है।[8] अष्टाध्यायी के अनुसार “अपत्यं पौत्र प्रभृति यद गोत्रम्”, एक पुरखा के पोते,पडपोते आदि जितनी संतान होगी वह एक गोत्र की कही जायेगी[9]

गोत्र को बहिर्विवाही समूह माना जाता है अर्थात ऐसा समूह जिससे दूसरे परिवार का रक्त संबंध न हो अर्थात एक

गोत्र के लोग आपस में विवाह नहीं कर सकते पर दूसरे गोत्र में विवाह कर सकते, जबकि जाति एक अन्तर्विवाही समूह है यानी एक जाति के लोग समूह से बाहर विवाह संबंध नहीं कर सकते। गोत्र मातृवंशीय भी हो सकता है और पितृवंशीय भी। ज़रूरी नहीं कि गोत्र किसी आदिपुरुष के नाम से चले।[10]

गोत्र परंपरा की उत्पत्ति

1. गोत्र की संकल्पना और विद्वानों के मत

गोत्र शब्द की कोई एक सार्वभौमिक और सर्वमान्य परिभाषा देना सरल नहीं है, क्योंकि भारतीय समाज में गोत्र की सामाजिक एवं सांस्कृतिक भूमिका समय के साथ परिवर्तित होती रही है। विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण के आधार पर गोत्र की व्याख्या की है। वैदिक साहित्य के पाश्चात्य अध्येताओं जैसे मैक्स मूलर, जॉन ब्रोग, एफ. रोजन तथा आर. रॉय आदि ने गोत्र की अवधारणा को अलग-अलग संदर्भों में समझने का प्रयास किया है। इसी प्रकार भारतीय विद्वानों जैसे पांडुरंग वामन काणे, दामोदर सातवलेकर, सर्वपल्ली राधाकृष्णन तथा जी. एस. घुर्ये ने भी गोत्र के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व पर प्रकाश डाला है। इन विद्वानों के विचारों में अनेक समानताएँ होने के साथ-साथ पर्याप्त मतभेद भी देखने को मिलते हैं।

गोत्र की अवधारणा के संदर्भ में एक विशेष बात यह है कि इसे विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। कभी इसे किसी ऋषि से उत्पन्न वंश के रूप में समझा गया, तो कभी इसे किसी काल्पनिक पूर्वज, टोटेम, प्रतीक, भौगोलिक चिह्न, वृक्ष, पशु-पक्षी अथवा नदी आदि के रूप में भी व्याख्यायित किया गया है। नृविज्ञानियों द्वारा प्रस्तुत इन विभिन्न अर्थों के कारण गोत्र की अवधारणा में कुछ हद तक अनेकार्थकता भी उत्पन्न हुई है। अतः गोत्र की संकल्पना को समझने के लिए भारतीय धार्मिक एवं ऐतिहासिक ग्रंथों के संदर्भों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

2. वैदिक साहित्य में गोत्र का उल्लेख

वैदिक साहित्य में गोत्र शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है। ऋग्वेद में 'गोत्र' शब्द का प्रयोग गौशाला, गायों के समूह, पर्वत-शिखर, बादल तथा मनुष्यों के समूह के अर्थ में भी हुआ है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रारंभिक वैदिक काल में गोत्र का प्रयोग किसी समूह या समुदाय के लिए किया जाता था। इस संदर्भ में एस. वी. करंदीकर का मत है कि ऋग्वैदिक काल में यद्यपि गोत्र शब्द का प्रयोग परिवार के अर्थ में नहीं किया जाता था, किंतु धीरे-धीरे इसका अर्थ 'समूह' या 'वंश समूह' की अवधारणा के निकट आने लगा था।

अथर्ववेद (5/21/3) में 'विश्वगोत्रयः' शब्द का उल्लेख मिलता है, जिसका अर्थ है 'सभी कुलों से संबंधित'। इससे यह संकेत मिलता है कि उस समय गोत्र का अर्थ परस्पर संबंधित व्यक्तियों के समूह से था। इसी प्रकार कौशिक सूत्र में भी एक मंत्र के माध्यम से गोत्र का अर्थ मनुष्यों के एक समूह या दल के रूप में व्यक्त किया गया है। तैत्तिरीय संहिता (1/8/18) में भी ऐसे संकेत मिलते हैं कि प्रख्यात ऋषियों के वंशज उनके नाम से पुकारे जाते थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक काल के उत्तरार्ध में गोत्र की अवधारणा धीरे-धीरे वंश परंपरा से जुड़ने लगी थी।

3. ब्राह्मण एवं उपनिषद काल में गोत्र व्यवस्था का विकास

तैत्तिरीय ब्राह्मण (1/1/4) में वर्णन मिलता है कि वैदिक अग्नि की प्रतिष्ठा के समय विभिन्न ऋषि वंशों के लिए अलग-अलग मंत्रों का प्रयोग किया जाता था। उदाहरणतः भृगु अथवा अंगिरस वंश के लिए विशेष मंत्रों का उच्चारण किया जाता था। इसी प्रकार बौधायन श्रौतसूत्र के अनुसार देवरात और विश्वामित्र गोत्र की उपशाखाएँ मानी गई हैं, जबकि अन्य ब्राह्मणों को अंगिरस वंश से संबंधित बताया गया है। इन उल्लेखों से यह स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण ग्रंथों के काल तक गोत्र का संबंध मुख्यतः जन्म और वंश से स्थापित हो चुका था।

उपनिषदों में भी गोत्र का उल्लेख मिलता है। ब्रह्मविद्या के उपदेश के समय ऋषि अपने शिष्यों को उनके गोत्र नाम से संबोधित करते थे, जैसे भारद्वाज, गार्ग्य, भार्गव और आश्वलायन आदि। छान्दोग्य उपनिषद (5/14/1) में गौतम, भारद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि, वशिष्ठ तथा कश्यप जैसे गोत्र नामों का उल्लेख मिलता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उपनिषद काल तक गोत्रों की व्यवस्था काफी हद तक संगठित और व्यवस्थित हो चुकी थी।

4. गोत्रों की संख्या और गोत्रकार ऋषि

गोत्र की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न मत भी मिलते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार गोत्र अनादि है और इसकी परंपरा वैदिक काल से चली आ रही है। दूसरी ओर नृजातीय साहित्य में यह भी कहा गया है कि गोत्र की उत्पत्ति किसी वास्तविक या काल्पनिक पूर्वज से संबंधित हो सकती है, जो मनुष्य, पशु, वृक्ष अथवा किसी अन्य प्राकृतिक तत्व का प्रतीक भी हो सकता है। गोत्रों की संख्या के विषय में भी विभिन्न मत पाए जाते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार मूल गोत्र चार माने गए हैं—अंगिरस, कश्यप, वशिष्ठ और भृगु। वहीं बौधायन श्रौतसूत्र के अनुसार आठ प्रमुख गोत्रों का उल्लेख मिलता है, जो सप्तऋषियों से संबंधित माने गए हैं। इन ऋषियों में विश्वामित्र, जमदग्नि, भारद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप तथा अगस्त्य का उल्लेख किया गया है। आगे चलकर इन मूल गोत्रों से अनेक उपगोत्रों का विकास हुआ।

पुराणों में भी गोत्रों और प्रवरों का विस्तृत वर्णन मिलता है। मत्स्य पुराण और स्कंद पुराण में विभिन्न गोत्रों तथा उनसे संबंधित प्रवर ऋषियों का उल्लेख किया गया है। महाभारत के अनुशासन पर्व में भी गोत्रों की उपशाखाओं का वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त धर्मशास्त्रों, संस्कार ग्रंथों तथा प्रवरमंजरी जैसे ग्रंथों में भी गोत्र और प्रवर की व्यवस्था का विस्तृत विवेचन किया गया है। समय के साथ गोत्र व्यवस्था का सामाजिक महत्व भी बढ़ता गया। विशेष रूप से वैवाहिक संबंधों के निर्धारण में गोत्र का महत्वपूर्ण स्थान स्थापित हुआ। समान गोत्र में विवाह को निषिद्ध माना गया, क्योंकि यह एक ही पूर्वज से उत्पन्न वंशजों के बीच विवाह के रूप में देखा जाता था। इस प्रकार गोत्र व्यवस्था को एक प्रकार के बहिर्विवाह समूह (Exogamous Group) के रूप में स्वीकार किया गया।

समग्र रूप से देखा जाए तो गोत्र का सामान्य अर्थ किसी ऐसे वंश समूह से है जो स्वयं को किसी एक सामान्य पूर्वज, विशेषतः किसी ऋषि का वंशज मानता है। पाणिनी के सूत्र में भी इसका उल्लेख मिलता है—

"अपत्यम् पोत्र प्रभूति गोत्रम्"

अर्थात किसी व्यक्ति के वंशजों की परंपरा को गोत्र कहा जाता है।

निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति अत्यंत प्राचीन, गतिशील और निरंतर विकसित होने वाली सांस्कृतिक परंपरा है। इस सांस्कृतिक परंपरा में गोत्र व्यवस्था का विशेष महत्व रहा है। गोत्र भारतीय समाज की वंश परंपरा और सांस्कृतिक पहचान का एक महत्वपूर्ण प्रतीक है। प्राचीन धार्मिक ग्रंथों, वेदों, उपनिषदों, पुराणों और धर्मशास्त्रों में गोत्र व्यवस्था के अनेक संदर्भ मिलते हैं, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि इसका संबंध मुख्यतः ऋषि परंपरा और वंश परंपरा से जुड़ा हुआ है। समय के साथ गोत्र व्यवस्था भारतीय समाज की सामाजिक संरचना का अभिन्न अंग बन गई और विशेष रूप से वैवाहिक संबंधों के निर्धारण में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका स्थापित हुई। समान गोत्र में विवाह का निषेध इसी व्यवस्था का परिणाम है, जिसका उद्देश्य वंश परंपरा की शुद्धता और सामाजिक संतुलन को बनाए रखना था।

यद्यपि आधुनिक समय में सामाजिक परिवर्तन और पाश्चात्य प्रभाव के कारण गोत्र व्यवस्था के प्रति दृष्टिकोण में कुछ परिवर्तन दिखाई देते हैं, फिर भी भारतीय समाज की सांस्कृतिक स्मृति और परंपरा में इसका महत्व आज भी

बना हुआ है। इसलिए आवश्यक है कि गोत्र परंपरा को केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित न मानकर उसे भारतीय समाज की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक धरोहर के रूप में भी समझा जाए।

संदर्भ सूची :-

1. शर्मा, महावीर प्रसाद., 'उत्तर भारतीय ब्राह्मण गोत्र शासनावली'. राजस्थानी ग्रन्थागार प्रकाशन, जोधपुर (राज.), 2016.
2. Brough, John., 'The Early Brahmanical System of Gotra and Pravara', Cambrige at the University Press, 1953.
3. Goswami, Nirpendra., 'Gana and Gotra in Indian Social Organisation', University of Calcutta, 2016.
4. https://www.bbc.com/hindi/india-46389804
5. तिवाड़ी,रघुनाथ सिंह., 'गोत्र प्रवर्तक ऋषि संक्षिप्त परिचय' राजस्थानी ग्रन्थागार प्रकाशन, जोधपुर (राज.), 2021.
6. जी॰ एस॰ घुर्ये: टू ब्राह्मानिकल इंस्टीट्यूशंस: गोत्र एंड चरण
7. जान ब्राग: द अर्ली ब्राह्मानिकल सिस्टम ऑफ गोत्र एंड प्रवर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पेज नं.
8. के॰ एम॰ कपाड़िया: भारतवर्ष में विवाह एवं परिवार, 1963, पृष्ठ 129-130.
9. महाभारत, शांति पर्व 296/17-18 (मूलगोत्रणी चत्वारी)
10. पांडुरंग वामन, काणे: धर्मशास्त्र का इतिहास
11. ऋग्वेद: 1/5/13 । 13/1/17 । 1 3 /39/4 3/43/7 6/65/5 10/40/2 10/120/8
12. पी॰वी॰ काणे: धर्मशास्त्र का इतिहास हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, प्रीस्ट 285
13. मजूमदार और मदन और इंट्रोडक्शन तो सोशल एंथ्रोपॉलजी 1957 प्लीज 111 113
14. पी॰वी॰ काणे: धर्मशास्त्र का इतिहास खंड एक पृष्ठ 286
15. प्रवर मंजरी: पृष्ठ 15 एवं 144
16. प्रवर मंजरी: पृष्ठ 33,34
17. मार्कडेय पुराण 1/1/3